□ देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्यरत्न

जैन परम्परा में तर्क-विद्या और तर्क-प्रधान वाङ्मय के आद्य प्रणेता आचार्य सिद्धसेन का अन्तरंग परिचय ऐतिहासिक विवेचना के साथ प्रस्तुत है।

जैन न्याय के समर्थ पुरस्कर्ता : सिद्धसेन दिवाकर

□

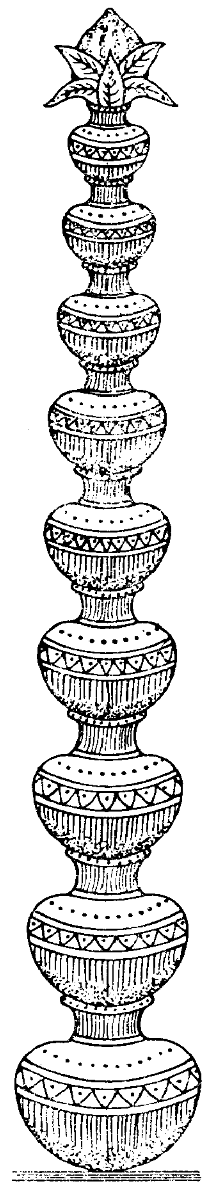

भारतवर्ष पर सरस्वती की बड़ी कृपा रही है जिसके फलस्वरूप यहाँ पर समय-समय पर अनेक लेखक, कवि, दार्शनिक और विचारक हुए हैं जिन्होंने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर अपनी प्रकृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर भी उन्हीं मूर्धन्य लेखकों में से एक हैं जिन्होंने जैन साहित्य को अनेक दृष्टियों से समृद्ध बनाया जैन परम्परा में तर्क-विद्या और तर्क-प्रधान संस्कृत वाङ्मय के वे आद्य प्रणेता हैं।[1] कवित्व की दृष्टि से जब हम उनके साहित्य का अध्ययन करते हैं, तो कवि कुल गुरु कालिदास और अश्वघोष का सहज ही स्मरण हो आता है। पण्डित सुखलालजी ने उनको प्रतिभा-मूर्ति कहा है,[2] यह अत्युक्ति नहीं है। जिन्होंने उनका प्राकृत ग्रन्थ 'सन्मति तर्क' देखा है, या उनकी संस्कृत द्वात्रिंशिकाएँ देखी हैं, वे उनकी प्रतिभा की तेजस्विता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। जैन-साहित्य की जो न्यूनता थी, उसी की पूर्ति की ओर उनकी प्रतिभा का प्रयाण हुआ। उन्होंने चर्वित-चर्वण नहीं किया। उन्होंने टीकाएँ नहीं लिखीं किन्तु समय की गतिविधि को निहार कर उन्होंने तर्क-संगत अनेकान्तवाद के समर्थन में अपना बल लगाया। सन्मति तर्क जैसे महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ का सृजन किया। सन्मति तर्क जैन दृष्टि से और जैन मन्तव्यों को तर्क शैली से स्पष्ट करने तथा स्थापित करने वाला जैन-साहित्य में सर्वप्रथम ग्रन्थ है। उत्तरवर्ती सभी श्वेताम्बर और दिगम्बर आचार्यों ने उसका आश्रय लिया है।

सन्मति तर्क में नयवाद का अच्छा विवेचन है। इसमें तीन काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि का सामान्य विचार है। दूसरे काण्ड में ज्ञान और दर्शन पर सुन्दर चर्चा है। तृतीय काण्ड में गुण और पर्याय, अनेकान्त दृष्टि और तर्क के विषय में अच्छा प्रकाश डाला गया है।

नय सात हैं। आगमों में सात नयों का उल्लेख है।[3] नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत। इन सभी नयों को द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयों में समाविष्ट किया जा सकता है। द्रव्यार्थिक दृष्टि में सामान्य या अभेदमूलक समस्त दृष्टियों का समावेश हो जाता है। विशेष या भेदमूलक जितनी भी दृष्टियाँ हैं उन सबका समावेश पर्यायार्थिक दृष्टि में हो जाता है। आचार्य सिद्धसेन ने इन दोनों दृष्टियों का समर्थन करते हुए लिखा कि श्रमण भगवान महावीर के प्रवचन में मूलतः दो ही दृष्टियाँ हैं—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक, शेष सभी दृष्टियाँ इन्हीं की शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं।[4] तत्त्व का कोई पहलू इन दो दृष्टियों का उल्लंघन नहीं कर सकता। क्योंकि या तो वह सामान्य होगा या विशेषात्मक। इन दो दृष्टियों को छोड़कर वह कहीं नहीं जा सकता।[5] आचार्य सिद्धसेन ने अनुभव किया कि दार्शनिक जगत् में इन दो दृष्टियों के कारण ही झगड़ा होता है। कितने ही दार्शनिक द्रव्यार्थिक दृष्टि को ही अन्तिम सत्य मानते हैं, तो कितने ही पर्यायार्थिक दृष्टि को। इन दोनों दृष्टियों का एकान्त आग्रह ही क्लेश का कारण है। अनेकान्त दृष्टि ही दोनों का समान रूप से सम्मान करती है। वही सत्य दृष्टि है।

इस प्रकार कार्य-कारण भाव का जो संघर्ष चल रहा है, उसे अनेकान्तवाद की दृष्टि से सुलझाया जा सकता है। कार्य और कारण का एकान्त भेद मिथ्या है। न्याय-वैशेषिक दर्शन एतदर्थ ही अपूर्ण है। सांख्य का यह मन्तव्य है कि कार्य और कारण में एकान्त अभेद है। कारण ही कार्य है अथवा कार्य, कारण रूप ही है। यह अभेद-दृष्टि भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकांगी है। आचार्य सिद्धसेन ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि के आधार से कार्य और कारण का प्रस्तुत विरोध नष्ट किया। कारण और कार्य में द्रव्यार्थिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। पर्यायार्थिक दृष्टि से दोनों में भेद है। अनेकान्त दृष्टि से दोनों को सही माना जाता है। सत्य तथ्य यह है, कि न कार्य-कारण में एकान्त भेद है न एकान्त अभेद ही है। यही समन्वय का श्रेष्ठ मार्ग है। असत्कार्यवाद और सत्कार्यवाद ही सम्यक् दृष्टि है।[६]

तत्त्व चिन्तन के सम्यक् पथ का विश्लेषण करते हुए उन्होंने आठ बातों पर बल दिया। वे आठ बातें यह हैं—(१) द्रव्य, (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भाव, (५) पर्याय, (६) देश, (७) संयोग और (८) भेद।[७] इन आठ में पहले की चार बातें स्वयं भगवान महावीर ने बताई हैं। उनमें पीछे की चार बातों का भी समावेश हो जाता है किन्तु सिद्धसेन ने दृष्टि और पदार्थ की सम्यक् प्रकार से व्याख्या करने के लिये आठ बातों पर प्रकाश डाला।

आचार्य सिद्धसेन पूर्ण तार्किक थे तथापि वे तर्क की मर्यादा समझते थे। तर्क की अप्रतिहत गति है, ऐसा वे नहीं मानते। उन्होंने अनुभव को श्रद्धा और तर्क इन दो भागों में बाँटा। एक क्षेत्र में तर्क का साम्राज्य है, तो दूसरे क्षेत्र में श्रद्धा का। जो बातें विशुद्ध आगमिक हैं जैसे भव्य और अभव्य, जीवों की संख्या का प्रश्न आदि, उन बातों पर उन्होंने तर्क करना उचित नहीं समझा। उन बातों को उसी रूप में ग्रहण किया गया। किन्तु जो बातें तर्क से सिद्ध या असिद्ध की जा सकती थीं उन बातों को अच्छी तरह से तर्क की कसौटी पर कस कर स्वीकार किया।

अहेतुवाद और हेतुवाद ये धर्मवाद के दो प्रकार हैं। भव्याभव्यादिक भाव अहेतुवाद का विषय है, और सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि हेतुवाद के अन्तर्गत।[८] आचार्य सिद्धसेन के द्वारा किया गया यह हेतुवाद और अहेतुवाद का विभाग हमें दर्शन और धर्म की स्मृति दिलाता है। हेतुवाद तर्क पर प्रतिष्ठित होने से दर्शन का विषय है और अहेतुवाद श्रद्धा पर आधृत होने से धर्म का विषय है। इस तरह आचार्य सिद्धसेन ने परोक्ष रूप में दर्शन और धर्म की मर्यादा का संकेत किया है।

जैनागमों की दृष्टि से सर्वज्ञ के ज्ञान और दर्शन को भिन्न माना गया है किन्तु आचार्य सिद्धसेन ने तर्क से यह सिद्ध किया है, कि सर्वज्ञ के ज्ञान और दर्शन में कोई भेद नहीं है। सर्वज्ञ के स्तर पर पहुँचकर ज्ञान और दर्शन दोनों एकरूप हो जाते हैं।[९] इसके अतिरिक्त अवधि और मनः पर्यवज्ञान को तथा ज्ञान और श्रद्धा को भी एक सिद्ध करने का प्रयत्न किया। जैनागमों में विश्रुत नैगम आदि सात नयों के स्थान पर छः नयों की स्थापना की। नैगम को स्वतन्त्र नय न मानकर उसे संग्रह और व्यवहार में समाविष्ट कर दिया। उन्होंने यहाँ तक कहा कि जितने वचन के प्रकार हो सकते हैं उतने ही मत-मतान्तर भी हो सकते हैं। अद्वैतवादों को उन्होंने द्रव्यार्थिक नय के संग्रह नय रूप प्रभेद में समाविष्ट किया। क्षणिकवादी बौद्धों की दृष्टि को पर्यायनयान्तर्गत ऋजु सूत्र नयानुसारी बताया। सांख्य दृष्टि का समावेश द्रव्यार्थिक नय में किया और काणाद दर्शन को उभयनयाश्रित सिद्ध किया।[१०]

ज्ञान और क्रिया के ऐकान्तिक आग्रह को चुनौती देते हुए सिद्धसेन ने कहा कि ज्ञान और क्रिया दोनों आवश्यक ही नहीं परम आवश्यक है। ज्ञान रहित क्रिया व्यर्थ है और क्रिया रहित ज्ञान निकम्मा है। ज्ञान और क्रिया का समन्वय ही वास्तविक सुख का कारण है। जन्म-मरण से मुक्त होने के लिये ज्ञान और क्रिया दोनों आवश्यक हैं।[११]

इस प्रकार सन्मति तर्क में उन्होंने अपने विचारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया है।

बत्तीसियाँ

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने बत्तीस बत्तीसियाँ रची थीं जिनमें से इक्कीस बत्तीसियाँ वर्तमान में उपलब्ध हैं। ये बत्तीसियाँ संस्कृत भाषा में रचित हैं। प्रथम की पांच बत्तीसियाँ और ग्यारहवीं बत्तीसी स्तुति-परक है। प्रथम पांच बत्तीसियों में श्रमण भगवान महावीर की स्तुति की गई है और ग्यारहवीं बत्तीसी में किसी पराक्रमी राजा की स्तुति की गई है। इन स्तुतियों को पढ़कर अश्वघोष के समकालीन बौद्ध स्तुतिकार मातृचेट रचित 'अध्यर्धशतक' और आर्यदेव रचित 'चतुःशतक' की स्मृति हो आती है। सिद्धसेन ही जैन-परम्परा के आद्य-स्तुतिकार हैं। आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी दोनों बत्तीसियाँ सिद्धसेन की बत्तीसियों का आदर्श सामने रखकर ही रची है। यह उनकी रचना से स्पष्ट होता है।[१२] आचार्य समन्तभद्र की 'स्वयंभूस्तोत्र' और युक्त्यनुशासन' नामक दार्शनिक स्तुतियां भी आचार्य सिद्धसेन दिवाकर की स्तुतियों का अनुकरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य हेमचन्द्र ने व्याकरण के उदाहरण में 'अनुसिद्धसेनं कवय:' लिखा है। यदि उसका भाव यह हो कि जैन-परम्परा के संस्कृत कवियों में आचार्य सिद्धसेन का स्थान सर्वप्रथम है, तो यह कथन आज भी जैन वाङ्मय की दृष्टि से पूर्ण सत्य है।

आचार्य सिद्धसेन ने इन्द्र और सूर्य से भी भगवान महावीर को उत्कृष्ट बताकर उनके लोकोत्तरत्त्व का व्यंजन किया।[१३] उन्होंने व्यतिरेक अलंकार के द्वारा भगवान की स्तुति की। हे भगवन्, आपने गुरुसेवा किये बिना ही जगत् का आचार्य पद पाया है जो दूसरों के लिये कदापि सम्भव नहीं।[१४] उन्होंने सरिता और समुद्र की उपमा के द्वारा भगवान में सब दृष्टियों के अस्तित्त्व का कथन किया है, जो अनेकान्तवाद की जड़ है।[१५]

सिद्धसेन सर्वप्रथम जैन वादी हैं। वे वाद विद्या के पारंगत पण्डित हैं। उन्होंने अपनी सातवीं वादोपनिषद् बत्तीसी में वादकालीन सभी नियम और उपनियमों का वर्णन कर विजय पाने का उपाय भी बताया है; साथ ही उन्होंने आठवीं बत्तीसी में वाद विद्या का परिहास भी किया है। वे कहते हैं, कि एक मांसपिण्ड के लुब्ध और लड़ने वाले दो कुत्तों में कभी मैत्री की सम्भावना भी है, पर दो सहोदर भी वादी हों तो उनमें कभी सख्य की सम्भावना नहीं हो सकती।[१६] उन्होंने स्पष्ट कहा है कि कल्याण का मार्ग अन्य है और वाद का मार्ग अन्य है। क्योंकि किसी भी मुनि ने वाग्युद्ध को शिव का उपाय नहीं कहा है।[१७]

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने ही सर्वप्रथम दर्शनों के वर्णन की प्रथा का श्रीगणेश किया। उसके पश्चात् अन्य आचार्यों ने उनका अनुसरण किया। आठवीं शताब्दी में आचार्य हरिभद्र ने षड्दर्शन समुच्चय लिखा और चौदहवीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने सर्वदर्शन संग्रह ग्रन्थ लिखा, जो सिद्धसेन द्वारा प्रस्तुत शैली का विकास था। अभी जो बत्तीसियाँ उपलब्ध हैं, उनमें न्याय, वैशेषिक, सांख्य, बौद्ध, आजीवक और जैन दर्शन का वर्णन है किन्तु चार्वाक और मीमांसक दर्शन का वर्णन नहीं है। सम्भव है उन्होंने चार्वाक और मीमांसक दर्शन का वर्णन किया होगा पर वे बत्तीसियाँ वर्तमान में उपलब्ध नहीं हैं। जैन दर्शन का वर्णन उन्होंने अनेक बत्तीसियों में किया है। उनकी पुरातनत्व समालोचना विषयक बत्तीसियों के सम्बन्ध में पण्डित सुखलालजी लिखते हैं, मैं नहीं जानता कि भारत में ऐसा कोई विद्वान हुआ हो जिसने पुरातनत्व की इतनी क्रान्तिकारिणी तथा हृदयहारिणी एवं तलस्पर्शिनी निर्भय समालोचना की हो। मैं ऐसे विद्वान को भी नहीं जानता कि जिस अकेले ने एक बत्तीसी में प्राचीन सब उपनिषदों तथा गीता का सार वैदिक और औपनिषद् भाषा में ही शाब्दिक और आर्थिक अलंकार युक्त चमत्कारिणी सरणी से वर्णित किया हो। जैन परम्परा में तो सिद्धसेन के पहले और पीछे आज तक ऐसा कोई विद्वान् हुआ ही नहीं है जो इतना गहरा उपनिषदों का अभ्यासी रहा हो और औपनिषद् भाषा में ही औपनिषद् तत्त्व का वर्णन भी कर सके। पर जिस परम्परा में सदा एकमात्र उपनिषदों की तथा गीता की प्रतिष्ठा है उस वेदान्त परम्परा के विद्वान् भी यदि सिद्धसेन की उक्त बत्तीसी को देखेंगे तब उनकी प्रतिभा के कायल होकर यही कह उठेंगे कि आज तक यह ग्रन्थ रत्न दृष्टि पथ में आने से क्यों रह गया! मेरा विश्वास है, कि प्रस्तुत बत्तीसी की ओर किसी भी तीक्ष्ण-प्रज्ञ वैदिक विद्वान् का ध्यान जाता तो वह उस पर कुछ न कुछ बिना लिखे न रहता। मेरा यह भी विश्वास है, कि यदि कोई मूल उपनिषदों का साम्नाय अध्येता जैन विद्वान् होता तो भी उस पर कुछ न कुछ लिखता।[१८]

आचार्य सिद्धसेन ने लिखा—पुराने पुरुषों ने जो व्यवस्था निश्चित की है, वह विचार की कसौटी पर क्या उसी प्रकार सिद्ध होती है? यदि समीचीन सिद्ध हो, तो हम उसे समीचीनता के नाम पर मान सकते हैं, पर प्राचीनता के नाम पर नहीं। यदि वह समीचीन सिद्ध नहीं होती, तो केवल मरे हुए पुरुषों के झूठे गौरव के कारण 'हाँ में हाँ' मिलाने के लिए मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ। मेरी सत्य-प्रियता के कारण यदि विरोधी बढ़ते हैं तो बढ़ें।[१९] पुरानी परम्परा अनेक हैं उनमें परस्पर विरोध भी है अतः बिना समीक्षा किये प्राचीनता के नाम पर यों ही झटपट निर्णय नहीं दिया जा सकता। किसी कार्य विशेष की सिद्धि के लिये यही प्राचीन व्यवस्था ठीक है अन्य नहीं; यह बात केवल पुरातन प्रेमी जड़ ही कह सकते हैं।[२०] आज जिसे हम नवीन कहकर उड़ा देना चाहते हैं, वही व्यक्ति मरने के बाद नयी पीढ़ी के लिए पुराना हो जायेगा, जबकि प्राचीनता इस प्रकार अस्थिर है, तब बिना विचार किए पुरानी बातों को कौन पसन्द कर सकता है।[२१]

न्यायावतार

जिस प्रकार दिग्नाग ने बौद्ध दर्शन मान्य विज्ञानवाद को सिद्ध करने के लिए पूर्व परम्परा में किञ्चित् परि-

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तन करके बौद्ध प्रमाण शास्त्र को व्यवस्थित रूप प्रदान किया उसी प्रकार सिद्धसेन दिवाकर ने भी पूर्व परम्परा का सर्वथा अनुकरण न करके अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से न्यायावतार की रचना की। उन्होंने जैन दृष्टि को अपने सामने रखते हुए भी लक्षण-प्रणयन में दिग्नाग के ग्रन्थों का पर्याप्त मात्रा में उपयोग किया और स्वयं सिद्धसेन के लक्षणों का उपयोग परवर्ती जैनाचार्यों ने अत्यधिक मात्रा में किया है।

आगम साहित्य में चार प्रमाणों का वर्णन है।[२२] आचार्य उमास्वाति ने प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो प्रमाण माने और उन्हीं में पाँच ज्ञानों को विभक्त किया। आचार्य सिद्धसेन ने भी प्रमाण के दो ही भेद माने हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष, किन्तु उन्होंने प्रमाण का निरूपण करते समय जैन परम्परा सम्मत पाँच ज्ञानों को प्रमुखता प्रदान नहीं की है, लोक-सम्मत प्रमाणों को मुख्यता दी है। उन्होंने प्रत्यक्ष की व्याख्या में लौकिक और लोकोत्तर दोनों प्रत्यक्षों का समावेश किया है और परोक्ष प्रमाण में अनुमान और आगम का। इस प्रकार सिद्धसेन ने सांख्य और प्राचीन बौद्धों का अनुकरण करके प्रत्यक्ष अनुमान और आगम का वर्णन किया है।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ही प्रथम जैन दार्शनिक हैं जिन्होंने न्यायावतार जैसी लघुकृति में प्रमाण, प्रमाता, प्रमेय और प्रमिति इन चार तत्त्वों की जैन दर्शन सम्मत व्याख्या करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने प्रमाण और उनके भेद-प्रभेदों का लक्षण किया है। अनुमान के सम्बन्ध में उनके हेत्वादि सभी अंग-प्रत्यंगों की संक्षेप में मार्मिक चर्चा की है।

उन्होंने केवल प्रमाण निरूपण की ही चर्चा नहीं की किन्तु नयों का लक्षण और विषय बताकर जैन न्याय-शास्त्र की ओर मनीषी दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वमतानुसार न्यायशास्त्रोपयोगी प्रमाणादि पदार्थों की व्याख्या करके ही आचार्य सिद्धसेन सन्तुष्ट नहीं हुए किन्तु उन्होंने संक्षेप में परमत का निराकरण भी किया है। लक्षण निर्माण में दिग्नाग जैसे बौद्धों का यत्र-तत्र अनुकरण करके भी उन्हीं के 'सर्वमालम्बने भ्रान्तम्' और पक्षाप्रयोग के सिद्धान्तों का युक्ति-पुरस्सर खण्डन भी किया। बौद्धों ने जो हेतु-लक्षण किया था, उसके स्थान में अन्तर्व्याप्ति के बौद्ध सिद्धान्त से ही फलित होने वाला 'अन्यथानुपपत्तिरूप' हेतु लक्षण अपनाया। वह आज भी जैनाचार्यों द्वारा प्रमाणभूत माना जाता है।[२३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विक्रम की पाँचवीं शताब्दी के ज्योतिर्धर आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने साहित्यिक क्षेत्र में जो मौलिकता दी है, वह महान है। वे जैन न्याय के प्रथम पुरस्कर्ता हैं।

---

१ दर्शन और चिन्तन, पृ० २७०—पंडित सुखलाल जी (हिन्दी)

२ वही, पृ० २६६

३ (क) अनुयोग द्वार सूत्र १५६
(ख) स्थानाङ्ग सूत्र ७।५५२

४ तित्थयरवयणसंगह—विसेसपत्थारमूलवागरणी।
दव्वट्ठिओ य पज्जवणओ य सेसा वियप्पासिं ॥—सन्मति तर्क प्रकरण १।३

५ दव्वं पज्जवविउयं दव्वविउत्ता य पज्जवा णत्थि।
उप्पादव्वयाट्ठिइ-भंगा, हंदि दव्वलक्खणं एयं ॥—सन्मति तर्क १।१२

६ जे संतवायदोसे सक्कोलूया भणंति संखाणं।
संखा य असव्वाए तेसिं सव्वे वि ते सच्चा ॥
ते उ भयणोवणिया सम्मदंसणमणुत्तरं होंति।
जं भवदुक्खविमोक्खं दो वि न पूरेंति पाडिक्कं ॥—सन्मति तर्क प्रकरण ३।५०।५१

७ दव्वं खित्तं कालं भावं पज्जाय-देस-संजोगे।
भेदं च पडुच्च समा भावाणं पण्णवणयज्जा ॥—सन्मति तर्क ३।६०

८ दुविहो धम्मावाओ अहेउवाओ य हेउवाओ य।
तत्थ उ अहेउवाओ भवियाऽभवियादओ भावा ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविओ सम्मद्दंसण-णाणं-चरित्तपडिवत्तिसंपन्नो ।
णियमा दुक्खंतकडो त्ति लक्खणं हेउवायस्स ।।—सन्मति तर्क प्रकरण ३।४३-४४

९ जं अप्पुट्ठे भावे जाणइ पासइ य केवली णियमा ।
तम्हा तं णाणं दंसणं च अविसेसओ सिद्धं ।।—सन्मति तर्क २।३०

१० जावइया वयणपहा, तावइया चेव होंति णयवाया ।
जावइया णयवाया, तावइया चेव परसमया ।।
जं काविलं दरिसणं, एयं दव्वट्ठियस्स वत्तव्वं ।
सुद्धोअणतणअस्स उ, परिसुद्धो पज्जवविअप्पो ।।
दोहि वि णएहिं णीअं, सत्थमुलूएण तह वि मिच्छत्तं ।
जं सविसअप्पणहाणत्तणेण, अण्णोण्णणिरवेक्खा ।।—सन्मति ३।४७-४८-४९

११ णाणं किरियारहियं, किरियामेत्तं च दो वि एगंता ।
असमत्था दाएउं जम्म-मरणदुक्ख मा भाई ।।—सन्मति तर्क ३।६८

१२ क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा ?
तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः ?—अयोगव्यवच्छेदिका श्लोक ३

१३ कुलिशेन सहस्रलोचनः, सविता चांशुसहस्रलोचनः ।
न विदारयितुं यदीश्वरो, जगतस्तद्भवता हतं तमः ।।

१४ न सदःसु वदन्नशिक्षितो, लभते वक्तृविशेषगौरवम् ।
अनुपास्य गुरुं त्वया पुनर्जगदाचार्यकमेव निर्मितम् ।।

१५ उदधाविव सर्वसिंधवः, समुदीर्णास्त्वयि सर्वदृष्टयः ।
न च तासु भवानुदीक्ष्यते, प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ।।

१६ ग्रामान्तरोपगतयोरेकामिषसंगजातमत्सरयोः ।
स्यात् सख्यमपि शुनोर्भ्रात्रोरपि वादिनोर्न स्यात् ।।—बत्तीसी ८।१

१७ अन्यत एव श्रेयांस्यन्यत एव विचरन्ति वादिवृषाः ।
वाक्संरंभं क्वचिदपि न जगाद मुनिः शिवोपायम् ।।

१८ दर्शन और चिन्तन (हिन्दी), पृ० २७५

१९ पुरातनैर्या नियता व्यवस्थितिस्तथैव सा किं परिचिन्त्य सेत्स्यति ।
तथेति वक्तुं मृतरूढगौरवादहं न जातः प्रथयन्तु विद्विषः ।।—बत्तीसी ६।३

२० बहुप्रकाराः स्थितयः परस्परं, विरोधयुक्ताः कथमाशु निश्चयः ।
विशेषसिद्धावियमेव नेति वा पुरातन-प्रेम जडस्य युज्यते ।।—बत्तीसी ६।४

२१ जनोऽयमन्यस्य स्वयं पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति ।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत् ।।—बत्तीसी ६।५

२२ (क) पमाणे चउव्विहे पण्णत्ते तं जहा पच्चक्खे अणुमाणे ।
ओवम्मे आगमे जहा अणुओगद्दारे तहा णेयव्वं पमाणं ।।—भगवती ५।३।१९१-१९२
(ख) अहवा हेऊ चउव्विहे पण्णत्ते, तंजहा पच्चक्खे, अणुमाणे, ओवम्मे, आगमे ।—स्थानाङ्ग सूत्र ३३८

२३ आगम युग का जैन दर्शन, पृ० २७५-२७६ का सारांश

☆☆

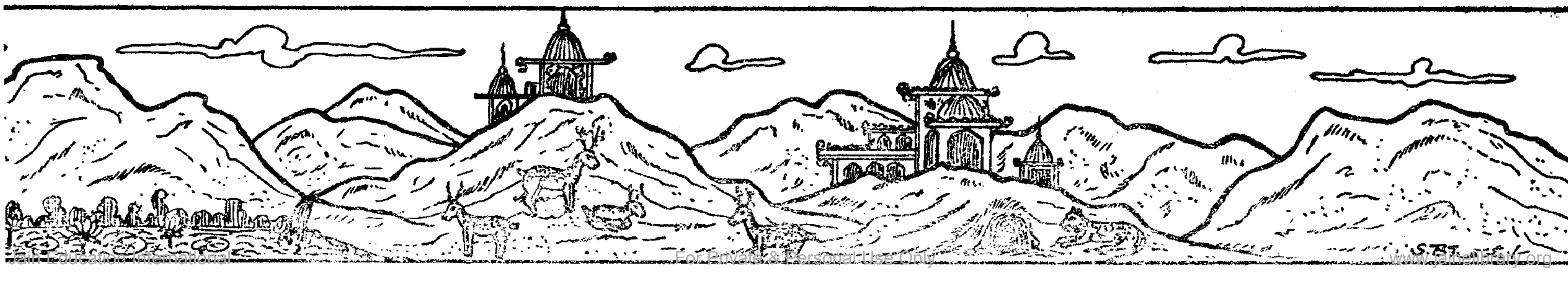

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org